RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-12
December-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

बिहार में दलित समाज की वर्तमान स्थिति की समस्या एवं समाधानः एक समीक्षात्मक अध्ययन

योगेन्द्र कुमार राम

शोधार्थी इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

परिचय

प्राचीन काल से वर्त्तमान काल तक बिहार के दलितों की जीवन यात्रा पर अगर दृष्टिपात किया जाए, तो ऐसा ज्ञात होता है कि दलितां` को अनके ानेक सामाजिक बंधनों, बर्बर अत्याचारों, हिन्दू शास्त्रों एवं धर्माचारों द्वारा खोदी गयी गहरी खाइयों से गुजरना पड़ा है। भारतीय धर्मशास्त्रों में वर्णित वर्णव्यवस्था भारतीय इतिहास की विशिष्टतम और विलक्षण सामाजिक संस्था है जिसके तहत के बल पर आध्यात्मिक जगत के अग्रणी व्यक्ति एवं ब्राह्मण–पुरोहित वर्ग, आर्य–अनार्य के मध्य श्रेणीकरण श्रम विभाजन करके समाज को श्रेणीबद्ध करने में सफल हुए। वर्ण एवं जाति भेद के कारण ही अस्पृश्य जनित गरीबी, अशिक्षा, भुखमरी, बीमारी, को नियति मानते हुए इसे पूर्वजन्म के दुष्चक्र के साथ जोड़ दिया और रही सही कसर शूद्र–दलित जाति के नियंत्रण के लिए कठोर नियम बनाकर मनु ने मनुस्मृति में पूरी कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जाति विभाजन सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों तक पहुँच गया जिसके कारण दलित हर मानवीय सुविधाओं के प्रत्येक अवसर से वंचित हो गये। आजादी के कई वर्षों के उपरातं भी दलितों की समस्याएँ आज भी हिमालय की तरह अडिग है। स्वतंत्रता के बाद से ही सरकार द्वारा सभी क्षेत्रों में अनेक सुधार कार्य करने का प्रयास किया गया है लेकिन आज हम 21वीं शताब्दी में प्रवेश करने के बावजूद भी बिहारी दलित गुलामी की बेड़ियों से मक्त नहीं हो पाये हैं।

दलित शब्द वर्त्तमान में राजनीतिक अवधारणा बन गई है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1910 ई0 में स्वामी अछूतानंद ने किया था, जो 1960 के दशक से हरिजनों के लिए लगातार किया जा रहा है। 'दलित' से समाज के सबसे निम्नतम एवं पिछड़े लोगों का बोध होता है। समाज में इस वर्ग के सामाजिक कल्याण और उत्थान की धारणा का इतिहास दीर्घकालीन अनवरत रहा है। वस्तुतः भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही विभिन्न समाज सुधारकों और सामाजिक संस्थाओं ने दलित प्रश्नों को उठाना प्रारम्भ किया। भारत में दलितों की गुलामी की शुरुआत हिन्दू समाज की उत्पत्ति के साथ ही हुई, जिस पर आधुनिकीकरण का आज तक विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। आजादी के उपरांत संविधान के हस्तक्षेप के बावजदू भी दलितों पर अत्याचार के प्रतिवेदन प्राप्त होते रहे हैं। अभी भी दलितों के आवास, व्यवसाय, शैक्षणिक उन्नति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था सामान्य आबादी से अलग रह रहे हैं, इनके बीच की खाई पूर्णरूप पटी नहीं है। लाख कोशिशों के बावजूद भी दलितों की अभिवंचना समाप्त नहीं हुई है। हजारों वर्षों से दलित शोषण और उत्पीड़न के शिकार होते आ रहे हैं। इसके लिए दलित भी कम जिम्मेवार नहीं है। सारी पिछड़ी एवं दलित जातियों की शायद एकमात्र कंठु यह है कि इन्हें सामाजिक सम्मान पाने का अधिक से अधिक मनुवादी होने या ब्राह्मणीकरण में ही दिखाई देता है, इन्हें कट्टर हिन्दू तत्व में शामिल हो जाना दलितों को सम्मान एवं समानता का भ्रम होता है। इस प्रक्रिया में ये अपनों से तो कट ही जाते हैं, और वे ऊँचे में भी स्वीकार्य नहीं हो पाते हैं। अपने भीतर के जातिवाद, ब्राह्मणवाद एवं मर्दवाद का विश्लेषण और उन्मूलन के लिए अगर दलित आन्दोलन नहीं करता, तो इसकी सार्थकता में संदेह होने लगता है। लड़ाई भी सरकारी या गरै सरकारी संस्थाओं में नौकरी पाने की दलित शब्द वर्त्तमान में राजनीतिक अवधारणा बन गई है।

इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1910 इ0 में स्वामी अछूतानंद ने किया था, जो 1960 के दशक से हरिजनों के लिए लगातार किया जा रहा है। 'दलित' समाज के सबसे निम्नतम एवं पिछड़े लोगों का बोध होता है। समाज में इस वर्ग के सामाजिक कल्याण और उत्थान की धारणा का इतिहास दीर्घकालीन अनावरत रहा है। वस्तुतः भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही विभिन्न समाज सधारकों और सामाजिक संस्थाओं ने दलित प्रश्नों को उठाना प्रारम्भ किया।

समाज के हर स्तर पर विशेषकर अपने समाज के भीतर लड़ी जाने वाली प्रक्रिया से भी है।4

आजादी के बाद बिहार में दलितों के जितने भी नेता उभरे हैं, वे लोग सम्पूर्ण समुदाय को नहीं उठाकर सिर्फ अपने परिवार और रक्त संबंधी समूह तक ही केन्द्रित रहे, फलतः लोक सभा और विधान सभा के चुनावों में इन दलित नेताओं ने अपने पुत्र–पुत्रियों और नजदीकी सगे संबंधियों को ही टिकट प्रदान किया। प्रदेश के दलित जातियों में दुसाध और रविदास जाति के ज्यादातर लोग लोकसभा और विधानसभा में चयनित होकर संतोषजनक न होकर सत्ता पर काबिज हुए

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

फिर भी इन दोनों जातियों का उत्थान संतोषजनक न होकर पूर्व की तरह ही यथावत् है।

आज दलित वर्ग संदर्भ में सामाजिक न्याय और राजनीतिक अधिकार पर विचार करें, तो यह केवल आरक्षण तक ही सीमित हो गया है। सामाजिक न्याय और राजनीतिक अधिकार को प्राप्त करने की आरक्षण नीति एक शुरुआत हो सकती है, परन्तु दलितों के सम्पूर्ण उत्थान इससे नहीं हो सकता। यदि हम दलितों का उत्थान चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि समाज में सामाजिक न्याय के साथ–साथ राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकार की स्थापना में मौलिक तत्वों को निःस्वार्थ भाव से रचनात्मक शुरुआत करनी होगी तथा समानता एवं भाईचारे की भावना को विकसित करनी होगी साथ ही दलितों के भीतर उनकी अपनी अस्मिता के प्रति एहसास पैदा करने की जरूरत है, तभी हम उनके लिए समुचित न्याय की बात कर सकेंगे। वर्तमान समाज मे ं भी व्यक्ति की पहचान उसकी जाति से हो रही है, न की भारतीय के रूप में देश में क्षेत्रीयतावाद, भाषावाद, साम्पद्रायिकतावाद में वृद्धि के कारण हमारा लोकतंत्र मूलतः जाति सम्प्रदाय में सिमटता जा रहा है। दलित आन्दोलन की अनेक बाधाओं में हमारे राजनीतिक दलों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। अनेक राजनीतिक दलों ने जाति, धर्म के आधार पर चुनावों को संचालित करके बिहार के समाज को एक जातिगत समाज बनाये रखने और दलित आन्दोलन की सफलता को संदिग्ध करके भारतीयता की जगह जातीयता को आगे लादकर भेद–भाव की खाई को और अधिक गहरा कर दिया है। वर्तमान में दलित आन्दोलन के नाम पर एक ऐसा आन्दोलन चलाया जा रहा है, जिसका उददेश्य कुछ विशेष नेताओं द्वारा अपने राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं और व्यक्तिगत लाभ को सिर्फ पूरा करना है।

दलित समाज में केवल खामियाँ ही नहीं थीं, बल्कि इसमें कुछ विशिष्ट लक्षण भी मौजूद थे, जिसे आज के समाज सहज रूप में अनुकरण करता दिखाई दे रहा है, जैसे इनके बीच प्रचलित पर्दा–प्रथा का न होना, सामूहिक श्रम करना, विधवा, पुनर्विवाह, जनकल्याणकारी भावना, सामूहिकता में विश्वास करना इत्यादि। इस समाज की कछु ऐसी विशेषताएँ हैं, जो सामाजिक रूप से उन्नत वर्गों में प्रचलित नहीं थे। आधुनिकता के दौर में महिलाओं में इसकी अहमियत बढ़ती जा रही है और इससे प्रेरणा लेकर सदियों से इनकी ऊपर थोपी हुई सामाजिक कुरीतियों को तोड़ने में यह सफल रही है। यद्यपि दलितों की दयनीय दशा को दूर करने का प्रयास समय–समय पर होते रहे, किन्तु बुद्ध से लेकर नानक और दयानंद तक को इस बिन्दु पर सम्पूर्ण सफलता नहीं मिली, फिर भी कई वर्षों के प्रयासों से इनमें जागरूकता एवं राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई। 18वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों ने आधुनिक भारत में सोचने विचारने का एक नया मार्ग प्रशस्त किया। दलितों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य आपसी सौहार्द आदि पर बल दिया, परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य इसाई धर्म का प्रचार–प्रसार था। जिस कारण आज भी अविभाजित बिहार के कई जिलों में ऐसे मिशनरियों के द्वारा दलितों के उत्थान सम्बन्धी कार्य संचालित किये जा रहे हैं।

19वीं शताब्दी में राजाराम मोहन राय पहले आधुनिक समाज सुधारक थे, जिन्होंने जाति प्रथा और जाति भेदभाव के उन्मूलन के लिए ब्रह्म समाज7 के माध्यम से कार्य किये, परन्तु परिणाम उत्साहवर्द्धक नहीं निकला। आर्य समाज के माध्यम से दयानंद सरस्वती ने भी दलितों की समस्याओं के उन्मूलन के लिए काफी काम किये गये, परन्तु इनका प्रयास भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे सका। 20वीं शताब्दी में कई मानवीय एवं विवेकशील परम्पराएँ शुरू हुई, जिसके परिणाम स्वरूप बिहार में भी दलित सुधार आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ।

1917 ई0 दलितोत्थान के एक महत्वपूर्ण पुरोध के रूप में महात्मा गाँधी का आगमन चम्पारण की धरती से आविर्भाव हुआ। चम्पारण का दलित आन्दोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अद्वितीय महत्व रखता है क्योंकि यहीं से गाँधीजी ने आर्थिक असमानता को समाप्त करने और समाज के शुद्धिकरण के लिए कार्य करना शुरू किया था। चम्पारण में ही गाँधीजी ने दलितों से कहा कि आप लोगों को आप लोगों को अपना भविष्य खुद बनाना चाहिए, जैसा कि ऊचँी जाति के लोगों ने बनाया है। 1927 के गाँधी के बिहार दौरे पर महिलाओं ने भी हरिजन फंड में दान दिये। इसी वर्ष जब गाँधीजी ने एक हरिजन उद्धार कार्यक्रम में गोपालगंज जिले आए, तो महेन्द्र सिंह की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया था। लोगों से अपील की गई थी कि हरिजनों के सेवा के लिए दान देने की जरूरत है, तभी महेन्द्र सिंह की पुत्री रामसवारी देवी, और पुत्रवधु ने अपने बहुमूल्य गहने गाँधीजी को दान स्वरूप दे दिये। इस तरह गाँधीजी ने 1934 में भी हरिजनों के उद्धार सम्बन्धी कार्यक्रम में शामिल होने के लिए बिहार का दौरा किया। सरकारी स्तर पर भी दलितों में सुधार के लिए 1947 में श्रीकृष्ण सिहं के नेतृत्व में गठित बिहार मत्रिमंडल ने दलितोत्थान के लिए कई रचनात्मक कदम और कई सुधारात्मक कानून लागू करने की चेष्टा की। कॉंग्रेस ने बिहार सेटी अधिनियम तथा मंत्री परिषद में व्यवस्थापिका और कार्यपालिक सम्बन्धी कानून पारित कर दलितों एवं पिछडों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास किया। सरकार द्वारा दलितों में शिक्षा के प्रचार प्रसार के साथ निःशुल्क कृषि प्रशिक्षण के लिए महाविद्यालयों में दलित छात्रों को प्रा थमिकता दी गई। सरकार ने मधुमक्खी पालन, लोह उद्यागे के माध्यम से दलितों के उत्थान का प्रयास किया। 26 जनवरी 1950 को देश में नया संविधान लागू किया गया। इसमें दलितों के हितों की सुरक्षा के लिए कई अधिनियम बनाये गये। भारतीय संविधान की धारा 330 के

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

अनुसार निश्चित वर्ग के लिए विशेष व्यवस्था की गई तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन जातियों के लिए लोकसभा में स्थान आरक्षित किये गये। धारा 332 के अधीन राज्य विधान सभाओं में स्थान आरक्षित किये गय। इसी प्रकार धारा 335 के अन्तर्गत सरकारी नौकरियों में भी इनके लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। 1952 ई0 में संसद के लिए पहला चुनाव हुआ, जिसमें बिहार में लोकसभा के कलु सीटों की संख्या 55 तय की गई थी। इनमें से

7 सीट दलितों के लिए आरक्षित किये गये। बिहार सरकार ने शुरू से ही दलितों की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया। 13 नवम्बर, 1953 को निश्चय किया गया कि जिन सेवाओं और पदों पर राज्य स्तर पर सीधी भर्ती द्वारा नियुक्तियाँ की जाएगी उनमें अनुसूचित जातियों के लिए 12: रिक्तियों आरक्षित रहेगी। बिहार सरकार द्वारा अछतू एवं दलितों के सामाजिक असमथर्ता को हटाने के लिए कई नियम बनाये। जैसे किसी दुकान में सार्वजनिक निवास और सार्वजनिक मनोरंजन स्थान मे ं प्रवेश का प्रावधान, किसी पेशा तिजारत या व्यवसाय का व्यवहार कर सार्वजनिक वाहन का इस्तेमाल करना, किसी दातव्य न्यास के अन्तर्गत किसी लाभ के उपयोग का प्रावधान, किसी सार्वजनिक जलपान गृह, भोजनालय, धर्मशाला, मुसाफिर खाना में रखे हुए बर्तनों को अछूत एवं दलितों द्वारा उपयागे करने का प्रावधान, किसी स्थान में प्रवेश का द्वार दलितों के लिए खोलने का प्रावधान, किसी नदी, जलाशय, कल, श्मशान घाट, स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ मार्ग और सार्वजनिक स्थान के उपयोग का प्रावधान, आभूषणों एवं सजावटों के उपयोग का प्रावधान, किसी भी क्षेत्र में निर्माण और आवास की प्राप्ति का प्रावधान, सामाजिक और धार्मिक रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार मे भाग लेने अधिकार मिला। दलितों पर हो रहे जातीय अत्याचार को रोकने क` लिए बिहार सरकार द्वारा कई कानून भी बनाये गये साथ ही राज्य स्तरीय अनुसूचित जाति आयोग की भी स्थापना की गई, जो कि अनुसूचित जाति के कल्याण के लिए कार्यरत है।

इस तरह हम देखते हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात् संवैधानिक संरक्षण एवं आर्थिक विकास के महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों के सकारात्मक परिणाम तो सामने आये हैं, लेकिन आजादी के बाद भी भारतीय लोकतंत्र में जातिभेद समाप्त नहीं हो सका। इस परिपेक्ष्य में बिहार भी पीछे नहीं है। सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप काफी संख्या में दलितों ने तो अपनी स्थिति सुधारने में सफलता पायी, लेकिन अभी भी अधिकांश दलित सरकारी संरक्षण से वंचित है तथा सरकारी अवसर का लाभ वे ही दलित बार–बार उठा रहे हैं, जो पहले से ही लाभान्वित है।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि दलित मुक्ति आन्दोलन का मूल्यांकन उपर्युक्त तथ्यों की ऐतिहासिकत और सामाजिक भूमिका के आधार पर समग्रता से किया जाना चाहिए। दलितों के समग्र मुक्ति के लिए इतिहास और भूगोल, अतीत और वर्तमान विस्तार एवं गहराई के सभी मोर्चा पर लड़ने की आवश्यकता है, इसलिए प्राथमिकता में दलितों को ही अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आगे आने की जरूरत है।

सन्दर्भ सूची

1. राजेन्द्र यादव; पूर्वोक्त, पृष्ठ 08
2. राजेन्द्र यादव; हंस, सत्ता विमर्श और दलित, नई दिल्ली, अगस्त 2004
3. आर0एस0 शर्मा; शूद्राज इन एंशियेंट इंडिया, पृष्ठ 27
4. आर0सी0अग्रवाल; भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोल, पृष्ठ 33
5. परिषद दृष्टि विधान परिषद बिहार अंक–2, 1990, पृष्ठ 22
6. बी0एल0 ग्रोवर एण्ड यशपाल; आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 271
7. उमानाथ; महान सेवक महेन्द्र नाथ सिंह, 1985, पृष्ठ 12
8. बिहार सरकार रिपोर्ट कार्ड, 2007, पृष्ठ 8
9. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत; बिहार के सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन.

© RRIJM 2015, All Rights Reserved